LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 10: विभूतियोग

3/3 (श्लोक 24-42), शनिवार, 13 सितंबर 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/PyEp208eF3k

सृष्टि में व्याप्त ईश्वर की विभूतियाँ

सुमधुर देशभक्ति गीत, श्री वल्लभाचार्य कृत मधुराष्टक, श्री हनुमान चालीसा पाठ और प्रार्थना के पश्चात दीप प्रज्वलन सम्पन्न हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण की वन्दना और गुरुदेव के चरणों में प्रणाम करते हुए ऊर्जावान वातावरण के मध्य, श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय के उत्तरार्द्ध के पवित्र विवेचन सत्र का शुभारम्भ अत्यन्त मधुरता और आनन्द के साथ हुआ।

श्रीभगवान् की असीम, अनन्त और महती कृपा से हमें यह अनुपम सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि इस दुर्लभ मानव जीवन को हम उसके सर्वोच्च लक्ष्य तक ले जाने का अवसर पा रहे हैं। इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण की दिशा में अग्रसर होने हेतु हम श्रीमद्भगवद्गीता के पवित्र श्लोकों का उच्चारण कर रहे हैं, उनके गहन अर्थ को समझने का प्रयास कर रहे हैं तथा उन्हें अपने जीवन में आत्मसात करने की साधना कर रहे हैं।

हम सभी परम सौभाग्यशाली हैं कि श्रीभगवान् ने हमें अपने दिव्य पथ पर आगे बढ़ने के लिए चुना है। निश्चित ही हमारे पूर्व जन्मों के पुण्य या किसी महापुरुष की कृपा-दृष्टि अथवा इस जन्म के शुभ संस्कार ही हमें इस मार्ग तक ले आए हैं जिसके कारण हमारा ऐसा सौभाग्य उदय हुआ कि हम श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने के लिए चुने गए। हम सभी के मन में यह श्रद्धा और तत्परता जागृत रहनी चाहिए कि हमें श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने का अवसर मिला है, हमने श्रीमद्भगवद्गीता को नहीं चुना, बल्कि अत्यन्त कृपा है कि हम श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ने के लिए चुन लिए गए हैं।

यह अध्याय **विभूतियोग** है। यहाँ पर अभिमान शब्द का प्रयोग किया जा रहा है, हम सब श्रीभगवान् की ही विभूतियाँ हैं। कहीं न कहीं हमें अपने भीतर यह गौरव-भाव रखना चाहिए कि हम श्रीभगवान् की चुनी हुई विभूतियाँ हैं क्योंकि हर किसी को यह दुर्लभ अवसर नहीं मिलता कि वह श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करे, उसे सुने और आत्मसात कर सके। जैसे किसी घर में कोई विशेष व्यञ्जन बनता है तो वह हर आने-जाने वाले को नहीं परोसा जाता, केवल अपने प्रियजनों को ही उसका रसास्वादन कराया जाता है। वैसे ही जब श्रीभगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश दिया, तब उन्होंने इसे संसार का सर्वोत्तम ग्रन्थ घोषित किया और स्वयं कहा-

गीता मम हृदयँ वास
"गीता मेरे हृदय में निवास करती है"
यह श्रीमद्भगवद्गीता के महत्त्व और उसकी शक्ति का वर्णन करता है।

अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता केवल एक ग्रन्थ नहीं, स्वयं श्रीभगवान् की जीवित विभूति है, उनका स्वरूप है और हम भाग्यशाली हैं कि उनकी अमृत-वाणी का रसपान कर पा रहे हैं।

विभूतियोग श्रीमद्भगवद्गीता का एक विशिष्ट और विलक्षण अध्याय है। यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि यदि श्रीभगवान् सर्वत्र हैं, तो फिर वे केवल कुछ विशेष स्थानों पर ही अपनी विभूतियों का वर्णन क्यों करते हैं? क्या उनकी सत्ता सर्वव्यापी नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर अत्यन्त सरल है।

वायु सर्वत्र व्याप्त है, अग्नि सर्वत्र है, जल सर्वत्र है फिर भी हम जानते हैं कि कुछ विशेष स्थान पर उन्हें प्राप्त करना अधिक सुलभ होता है।
इसी प्रकार श्रीभगवान् भी सर्वव्यापी होते हुए कुछ विशेष स्थानों में दर्शनीय होते हैं, सरलता से अनुभव में आते हैं।

आइए, इसी पवित्र भावभूमि पर आरूढ़ होकर हम दशम अध्याय के चौबीसवें श्लोक से आज का चिन्तन आरम्भ करें।

10.24

पुरोधसां(ञ्) च मुख्यं(म्) मां(म्), विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं(म्) स्कन्दः(स्),सरसामस्मि सागरः॥10.24॥

हे पार्थ ! पुरोहितों में मुख्य बृहस्पति को मेरा स्वरूप समझो। सेनापतियों में कार्तिकेय और जलाशयों में समुद्र मैं हूँ।

विवेचन- पुरोधसां- पुरोधा का अर्थ है पुरोहित अर्थात् गुरु। श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! पुरोहितों में बृहस्पति मुझको मान। बृहस्पति देवताओं के गुरु हैं। सामुद्रिक शास्त्र के प्रणेता अर्थात् ज्योतिष शास्त्र के प्रणेता हैं। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार तर्जनी का अग्रभाग उठा हुआ हो तो कहते हैं कि बृहस्पति प्रबल है, जिसका बृहस्पति तेज है घर में चलती उसी की है।

सेनानीनामहं(म्) स्कन्दः(स्)- सेनापतियों में स्कन्द, कार्तिकेय भी मुझे जान।

स्कन्द कौन हैं?

हमारे **अट्ठारह पुराणों में सबसे विशाल पुराण स्कन्द पुराण है**। इसकी मूल कथा को जानते हैं।

जब ताड़कासुर का प्रादुर्भाव हुआ तो उसने अपने आतङ्क से सम्पूर्ण विश्व को त्रस्त कर दिया। ब्रह्माजी के वरदान से वह इतना पुष्ट हो गया कि मनुष्य तो क्या कोई भी देवता उसको मार नहीं सकते थे। उसका उपद्रव दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। अन्ततः सभी को यह स्पष्ट हुआ कि उसका विनाश केवल एक ही उपाय से सम्भव है- स्वयं भगवान् शङ्कर के तेज से उत्पन्न दिव्य बालक ही उस दैत्य का अन्त कर सकता है। उसके अतिरिक्त ताड़कासुर का संहार किसी के लिए भी असम्भव था। सभी देवता ताड़कासुर के अत्याचार से व्याकुल होकर भगवान् शिव के पास पहुँचे। उस समय शिवजी गहन समाधि में, राम-नाम के जप में लीन थे।

देवताओं ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया-
“भगवान्! ताड़कासुर का अन्त केवल आपके पुत्र द्वारा ही सम्भव है। कृपा कर एक दिव्य पुत्र का प्राकट्य कीजिए, अन्यथा यह दैत्य सम्पूर्ण सृष्टि को नष्ट कर देगा।”

समाधिस्थ शिवजी का ध्यान उनकी प्रार्थना पर न गया। जब देवताओं ने बार-बार करुण निवेदन किया, तब अन्ततः शिवजी ने अपना उग्र तेज स्खलित किया। वह दिव्य वीर्य इतना प्रचण्ड था कि देवता उसे धारण करने में असमर्थ हो गए। सङ्कट में पड़े देवताओं ने उसे गङ्गाजी को समर्पित कर दिया। गङ्गाजी भी उस अपार तेज से विह्वल हो उठीं। उन्हें लगा कि वे स्वयं नष्ट हो जाएँगी, अतः उन्होंने अपने प्रवाह से उस दिव्य वीर्य को झाड़ियों में प्रवाहित कर दिया। यहीं, उस तेज से एक अत्यन्त दिव्य और

तेजस्वी बालक का प्राकट्य हुआ।

भगवान् शङ्कर के तेज स्खलन से प्रकट होने के कारण इनका नाम स्कन्द पड़ा।

उसके जन्म से पूरा वन प्रकाशमय हो उठा। उस अद्वितीय तेज के कारण बालक को देखकर सभी चकित रह गए। संयोग से उसी समय सप्तऋषियों की सातों पत्नियाँ वहाँ से होकर जा रही थीं। उनमें से एक तो आगे निकल गई, परन्तु शेष छः पत्नियाँ, जिन्हें **कृतिकाएँ** कहा जाता है, उस विलक्षण प्रकाश से आकर्षित होकर वहीं रुक गईं। उन्होंने देखा कि झाड़ियों में अत्यन्त तेजस्वी, सुकुमार और अनुपम सौन्दर्य से युक्त एक नवजात बालक प्रकट हुआ है।

उस अद्वितीय शिशु को देखकर मातृत्व से परिपूर्ण उनके हृदय में असीम वात्सल्य उमड़ पड़ा। वे सोचने लगीं-"यह तो अभी-अभी जन्मा हुआ बालक है, इसे दूध की आवश्यकता होगी। हम इसे अपना आशीष देंगी और दुग्धपान करायेंगी।" ज्यों ही उनके हृदय में यह सङ्कल्प उठा, उसी क्षण वह दिव्य शिशु चमत्कारिक रूप से छः मुखों वाला हो गया। प्रत्येक मुख से उसने एक-एक माता का स्तनपान करना आरम्भ किया। केवल थोड़ी मात्रा में ही दूध ग्रहण करते ही बालक असाधारण वेग से बढ़ने लगा और उसकी दिव्यता और तेज चारों ओर फैलने लगा। यह दृश्य देखकर कृतिकाओं ने विचार किया, क्योंकि वे ऋषियों की पत्नियाँ थीं उन्हें समझते देर ने लगी कि यह कोई सामान्य बालक नहीं, वरन् स्वयं भगवान शङ्कर का अंश, उन्हीं का पुत्र है।

कृतिकाओं का दूध पीने के कारण इस दिव्य बालक का नाम कार्तिकेय रखा गया।

कृतिकाएँ बालक को लेकर शिवजी को उनके पुत्र से मिलाने शिवजी के पास पहुँचीं। कृतिकाओं ने उन्हें अवगत कराया, कहा- "हम आपके पुत्र को आपके पास लेकर आयी हैं।" पार्वती जी ने पूछा कि मैं तो यहाँ बैठी हूँ, यह किसका पुत्र है? परन्तु पार्वती जी तो साक्षात जगदम्बा हैं, ध्यान करके जान लिया कि ये शिवजी के ही पुत्र हैं। उनके तेज से ही इस बालक का जन्म हुआ था, अतः उन्होंने कहा—"यह मेरा ही बालक है।"
अत्यन्त स्नेह और ममता से पार्वती जी ने बालक का आलिङ्गन किया। इस आलिङ्गन से छः सिर एक हो गए। छः सिर के होने के कारण उन्हें षडानन कहा गया।

शिव परिवार में यह विशेषता अद्भुत है- कार्तिकेय षडानन, शिवजी पञ्चानन और गणेश जी गजानन।
प्रत्येक अद्भुत रूप और दिव्यता से युक्त हैं।

यह स्कन्द इतने तेजस्वी थे कि जन्म लेते ही देवता उनकी स्तुति करने पहुँच गए। उनके अद्भुत पराक्रम को देखकर इन्द्र भी लज्जित हो गए। इसी दौरान एक युद्ध का वर्णन भी आता है जिसमें स्कन्द ने इन्द्र सहित समस्त देवताओं को पराजित किया।
इन्द्र ने कहा- "हे स्कन्द! अब आप इन्द्र बन जाइए, आपने तो मुझे पराजित कर दिया है।"
स्कन्द ने उत्तर दिया- "नहीं, यह पद आप ही सम्भालिये।"
इन्द्र ने प्रार्थना की और कहा, "आप हमारी सेना के सेनापति बन जाएँ और उस ताड़कासुर का वध करें। उसका वध आपके द्वारा ही हो सकता है।"
स्कन्द ने यह स्वीकार कर लिया और देवसेना के सेनापति बनकर सेना का नेतृत्व किया। उन्होंने ताड़कासुर का वध किया और देवताओं के सेनापति के रूप में विख्यात हो गए।

सेनानीनामहं(म्) स्कन्दः(स्)-
श्रीभगवान् कहते हैं कि सेनापतियों में स्कन्द मैं ही हूँ।

एक प्रसङ्ग और है-

जब गणेश जी और कार्तिकेय जी के बीच यह सवाल उठा कि "कौन बड़ा है? कौन महान है?" तो उन्हें यह परीक्षा दी गयी कि जो सबसे पहले ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाकर माता-पिता के चरणों में पहुँचेगा, वही बड़ा होगा। कार्तिकेय जी मोर पर सवार होकर उड़ गए, जबकि गणेश जी का वाहन मूषक था, जो जल्दी चल नहीं पा रहा था। गणेश जी ने धैर्यपूर्वक माता-पिता के

चरणों की परिक्रमा की और कहा, "माता-पिता के चरणों में ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाया है।" इस कारण गणेश जी को सभी देवताओं द्वारा प्रथम पूजनीय माना गया। कार्तिकेय जी को यह देखकर थोड़ा दुःख हुआ और वे कैलाश से उड़कर दक्षिण की ओर चले गए, इसलिए दक्षिण भारत में कार्तिकेय जी की विशेष उपासना होती है। दक्षिण भारत में कार्तिकेय जी के अनेक मन्दिर हैं।

उत्तर भारत में कार्तिकेय भगवान का एक भी मन्दिर नहीं है। मोर की सवारी के कारण **मुरूगन** के नाम से कार्तिकेय जी की प्रतिष्ठा दक्षिण भारत में हो गई।

सरसामस्मि सागरः-
श्रीभगवान् कहते हैं कि जलाशयों में समुद्र मैं हूँ।

10.25

महर्षीणां(म्) भृगुरहं(ङ्),गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां(ञ्) जपयज्ञोऽस्मि, स्थावराणां(म्) हिमालयः॥10.25॥

महर्षियों में भृगु और वाणियों (शब्दों) में एक अक्षर अर्थात् प्रणव मैं हूँ। सम्पूर्ण यज्ञों में जप यज्ञ (और) स्थिर रहने वालों में हिमालय मैं हूँ।

विवेचन-

महर्षीणां(म्) भृगुरहं(ङ्)-
श्रीभगवान् कहते हैं- हे अर्जुन! महर्षियों में भृगु मैं हूँ।

भृगुजी शुक्राचार्य और लक्ष्मी जी के पिता हैं। एक बार ऋषियों के बीच यह विवाद उठा कि सबसे महान देवता कौन हैं– ब्रह्माजी, विष्णुजी या महेशजी? सभी अपने-अपने तर्क दे रहे थे। कोई शिवजी को श्रेष्ठ बता रहा था, कोई विष्णुजी को, तो कोई ब्रह्माजी का पक्ष ले रहा था। अन्ततः सभी ऋषियों ने निश्चय किया कि इस सत्य को जानने के लिए किसी परीक्षा की आवश्यकता है। उन्होंने भृगु ऋषि को यह दायित्व सौंपा कि वे तीनों देवताओं की परीक्षा लेकर बताएं कि उनमें से सर्वश्रेष्ठ कौन हैं। भृगु ऋषि पहले तो चिन्तित हुए, क्योंकि यह कार्य सरल नहीं था। देवताओं की परीक्षा लेना अत्यन्त जोखिमपूर्ण था। लेकिन सभी ऋषियों के आग्रह पर वे सहमत हो गए।

सबसे पहले वे ब्रह्मलोक पहुँचे। वहाँ जाकर भृगु ऋषि ब्रह्माजी से भी ऊँचे आसन पर बैठ गए। उन्होंने ब्रह्माजी को प्रणाम भी नहीं किया और उपेक्षा भरी दृष्टि से देखकर अपने काम में लग गए। यह देखकर ब्रह्माजी के मन में क्रोध जाग उठा। उन्होंने कहा – "भृगु! तुम मेरे पुत्र हो। तुम्हें इतना भी विवेक नहीं कि गुरु और पिता के प्रति आदर दिखाओ? प्रणाम तक नहीं किया और ऊपर आसन पर बैठ गए। यह मेरा सीधा अपमान है।"

भृगु ऋषि ने शान्त भाव से प्रणाम करते हुए कहा – "क्षमा चाहता हूँ पिताश्री, मैं किसी और कार्य से आया हूँ। बाद में आपसे संवाद करूँगा" और वहाँ से निकल गए।

अपने मन में उन्होंने निश्चय किया– "यह तो स्पष्ट है कि ब्रह्माजी अपने क्रोध को रोक नहीं पाए। अब अगली परीक्षा देखनी होगी।"

भृगु ऋषि इसके बाद कैलाश पहुँचे। वहाँ भी उन्होंने वही परीक्षा आरम्भ की। शिवजी समाधिस्थ भाव में विराजमान थे। भृगु ऋषि ने बिना प्रणाम किए, सीधे कठोर वचनों से बात शुरू की- "अरे शिव! तुम तो बस ऐसे ही विराजे रहते हो। तुम्हें कोई बुद्धि नहीं है, विवेक नहीं है। हर किसी को, यहाँ तक कि राक्षसों को भी वरदान दे डालते हो और फिर हमें उनकी दुष्टताओं का बोझ सहना पड़ता है। तुम्हें सोच-समझकर कार्य करना चाहिए।" कुछ देर तक शिवजी ने धैर्यपूर्वक उनके कटु वचनों को सुना,

किन्तु जब भृगु ऋषि ने सीमा पार कर दी, तब शिवजी का तीसरा नेत्र हल्का सा फड़क उठा। उनकी तिरछी दृष्टि में प्रचण्ड ज्वाला की आभा दिखाई दी। यह देखते ही भृगु ऋषि घबरा उठे। तुरन्त हाथ जोड़कर विनम्रता से बोले- "भगवान्! मुझसे बड़ी भूल हो गई। मैंने अज्ञानवश आपके प्रति अनुचित शब्द कहे। कृपा करके मुझे क्षमा कीजिए।"

इतना कहकर भृगु ऋषि शीघ्र ही वहाँ से प्रस्थान कर गए। उनके मन में यह स्पष्ट हो गया कि शिवजी क्रोध को दबाने में सक्षम तो हैं, परन्तु अपमान होने पर उनका उग्र रूप प्रकट हो सकता है।

भृगु ऋषि अन्त में विष्णु लोक पहुँचे। उस समय भगवान् नारायण क्षीरसागर में शयन कर रहे थे और लक्ष्मीजी उनके श्रीचरणों की सेवा कर रही थीं। लक्ष्मीजी ने भृगु ऋषि को आते देखा तो मुस्कुराकर प्रणाम किया- "पिताजी पधारे हैं।" भृगुजी विष्णु भगवान् के समीप जाकर खड़े हुए और लक्ष्मी जी से कहा-"उन्हें जगाइए।" लक्ष्मी जी विनम्रता से बोलीं-"नारायण तो योगनिद्रा में हैं, उन्हें जगाना किसी के लिए सम्भव नहीं है। जब वे स्वयं जागेंगे तब आप वार्ता कीजिए।" भृगुजी को तो परीक्षा लेनी ही थी। उन्होंने सोचा, बिना परख के उद्देश्य पूरा न होगा। अचानक आवेश में आकर उन्होंने भगवान् विष्णु के वक्षस्थल पर पैर से प्रहार कर दिया और कटु वचन कहे- "अतिथि द्वार पर खड़ा है और तुम यहाँ निद्रा में लीन हो! क्या यही मर्यादा है?"

छाती पर प्रहार होते ही भगवान् विष्णु योगनिद्रा से जागे परन्तु उनके मुख पर न क्रोध था, न असन्तोष बल्कि करुणा और नम्रता झलक रही थी। वे तुरन्त उठकर भृगु ऋषि के चरणों में झुके और बोले- "महर्षि, आपके कोमल चरण मेरे कठोर वक्ष पर पड़े हैं, कहीं आपको पीड़ा तो नहीं पहुँची? इस आघात से आपको चोट न लगी हो।" विष्णु भगवान् का यह अप्रत्याशित विनम्र व्यवहार देखकर भृगु ऋषि हृदय से द्रवित हो उठे। वे प्रसन्न होकर बोले- "हे नारायण! मेरा प्रयोजन पूर्ण हो गया। अन्य देवताओं को मैंने केवल कठोर वचन कहे और वे क्रुद्ध हो उठे। आपको तो मैंने लात मारी फिर भी आप क्रोध न करके मेरी ही चिन्ता कर रहे हैं। आपसे श्रेष्ठ कोई और नहीं हो सकता।"

भगवान् नारायण ने अत्यन्त शान्त भाव से कहा- "मैं केवल चिन्ता नहीं करता। आपके चरण मेरे लिए पूज्य हैं इसलिए मैं उन्हें अपने वक्ष पर सदैव धारण करूँगा।" इसी कारण जब भी भगवान् विष्णु का विग्रह देखा जाता है, तो उनके वक्षस्थल पर चरण-चिह्न अङ्कित मिलते हैं, जिन्हें भृगु-लता कहा जाता है, किन्तु यह दृश्य लक्ष्मी जी को सहन न हुआ। उन्होंने भृगु ऋषि से कहा-

"पिताजी! आपने चाहे परीक्षा लेने के लिए ऐसा किया हो, किन्तु यह अनुचित है। यह आपके जामाता हैं और उन पर इस प्रकार चरण-प्रहार करना एकदम असङ्गत और अनैतिक है, इसलिए आज से मैं आपके कुल में निवास नहीं करूँगी।" भृगु ऋषि ने सोचा कि यदि ऐसा है तो ठीक है। मैं तो बिना धन के भी अपना जीवन व्यतीत कर लूँगा किन्तु यदि मेरे वशंज ब्राह्मण निर्धन रहेंगे, तो यह उचित नहीं होगा। जब वे लौटकर अपने आश्रम पहुँचे, तो भृगुवंशी ब्राह्मण विलाप करने लगे कि आपने यह क्या कर दिया? लक्ष्मी जी के बिना हमारा जीवन कैसे चलेगा? हम सब निर्धन हो जाएँगे।

तब भृगु ऋषि ने समाधान बताते हुए कहा कि यदि यह पाप मैंने किया है तो इसका प्रायश्चित भी मैं ही करूँगा। उन्होंने भृगु-संहिता की रचना की। भृगु-संहिता ज्योतिष शास्त्र का परिमार्जित स्वरूप है। बृहस्पति जी ने जो सामुद्रिक शास्त्र लिखा उसी का विस्तृत स्वरूप है। भृगु ऋषि ने घोषणा की, कि जो ब्राह्मण इसे अङ्गीकार करेगा उस पर लक्ष्मी कभी कृपा करना नहीं छोड़ेंगी। भृगु ऋषि का यह विधान आज भी फलित होता है। यहाँ तक कि यदि कोई आधे-अधूरे हस्तरेखा ज्ञान से भी हस्तरेखा देखेगा, तो भी लोग उसे दक्षिणा अवश्य देंगे। ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से ब्राह्मण कभी भी पूर्ण निर्धन नहीं रहे। इस प्रकार भृगुवंश की सन्तुष्टि हो गई।
भृगु ऋषि से भार्गव वंश हुआ।

महर्षीणा(म्) भृगुरहं(ङ्)
श्रीभगवान् कहते हैं कि ऋषियों में, मैं भृगु हूँ।

गिरामस्म्येकमक्षरम्
श्रीभगवान् कहते हैं कि शब्दों में ऊँकार मैं हूँ।
ऊँकार सभी शब्दों का मूल है। ऊँकार शब्द भी है और ध्वनि भी है। सभी सम्प्रदायों में ॐ एक पवित्र और मान्य प्रतीक है।

यज्ञानां(ञ्) जपयज्ञोऽस्मि-
श्रीभगवान् कहते हैं कि यज्ञों में जप यज्ञ मैं हूँ।

श्रीमद्भगवद्गीता के चौथे अध्याय में श्रीभगवान् ने बारह प्रकार के यज्ञों का उल्लेख किया है और यह भी कहा है कि वेदों में सैकड़ों यज्ञ वर्णित हैं, परन्तु दसवें अध्याय में श्रीभगवान् ने विशेष रूप से स्पष्ट किया कि सभी यज्ञों में जप-यज्ञ मैं हूँ, अर्थात् नाम-जप को स्वयं श्रीभगवान् ने यज्ञस्वरूप विभूति माना है।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी श्रीरामचरितमानस में नाम-जप की महिमा गाते हुए कहते हैं—

भायँ कुभायँ अनख आलस हूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

कलियुग केवल नाम अधारा। सुमिरि सुमिरि नर उतरिहि पारा।।

इन चौपाइयों का भाव यह है कि चाहे प्रेम से, रोष से, उदासीनता से या आलस्य से, किसी भी रूप में प्रभु का नाम स्मरण करने से दसों दिशाओं में कल्याण होता है। कैसे भी भाव से-अभाव से, आलस से, अच्छे भाव से, बुरे भाव से, नाम जप कैसे भी करो, वह कल्याणकारी होता है और जीवन को मङ्गलमय बना देता है। कलियुग में श्रीभगवान् के नाम का जप ही सबसे सरल, सुलभ और प्रभावी साधन है। यही कारण है कि श्रीभगवान् ने स्वयं कहा कि यह जप भी मैं ही हूँ।

भक्ति मार्ग के सभी सन्तों ने श्रीभगवान् नाम के जाप को सबसे सरल, सुलभ और प्रभावी साधन बताया है। कोई "श्रीराम, जय राम, जय-जय राम" का जप करता है, कोई "हरे राम", कोई "श्रीकृष्णं शरणं मम", कोई "नारायण-नारायण" तो कोई "ॐ नमः शिवाय" का। सत्य यह है कि किसी भी नाम मन्त्र का जप जीवन के लिये मङ्गलकारी है। हमारे पूर्व जन्म के पापों का शोधन भी नाम जप से हो जाता है। श्रीभगवान् का नाम लेने से वे स्वयं प्रसन्न होकर अपना धाम प्रदान करते हैं।

किसी भी नाम के मन्त्र का जाप करो। गीता प्रेस के संस्थापक परम श्रद्धेय श्री जयदयाल गोयन्दकाजी साधकों को नाम जप का आग्रह करते है। रोज एक लाख नाम जप करो। एक लाख नाम जप करने में आठ घण्टे लगते हैं। अब तो बहुत अच्छा साधन है- पहले माला से करते थे, फिर काउन्टर आ गए, अब मोबाइल ऐप पर ही टप-टप करते जाओ और अपनी सुविधा पूर्वक जप पूर्ण करते जाओ। नाम जप का नियम जीवन बदल देता है। जीवन में यदि आध्यात्मिक ऊँचाई बढ़ानी है तो नित्य नाम जप की गिनती का नियम ले लेना चाहिए। गिनती का नियम लेने से अनुशासन आता है। गिनती का नियम शिथिल करने से नाम जप धीरे-धीरे कम हो जाता है। नियम हो तो रात में जागकर भी पूरा करना पड़ता है। आरम्भ में ग्यारह सौ का नियम लें, फिर इक्कीस सौ का, धीरे धीरे बढ़ा सकते हैं। नाम जप से कल्याण तो होता ही है। श्रीभगवान् ने इसलिए नाम जप को यज्ञ की उपमा दी है।

स्थावराणां(म्) हिमालयः
श्रीभगवान् कहते हैं कि स्थावरों में, मैं हिमालय हूँ।

हिमालय न केवल अचल और धैर्य का प्रतीक है, बल्कि लौकिक और पारलौकिक दोनों ही दृष्टि से अद्वितीय है। वहीं स्वर्ग का द्वार है, वहीं कैलाश स्थित है।

10.26

अश्वत्थः(स्) सर्ववृक्षाणां(न्),देवर्षीणां(ञ्) च नारदः।
गन्धर्वाणां(ञ्) चित्ररथः(स्), सिद्धानां(ङ्) कपिलो मुनिः॥10.26॥

सम्पूर्ण वृक्षों में पीपल, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि (मैं हूँ)।

विवेचन- अश्वत्थः(स्) सर्ववृक्षाणां(न्)-
श्रीभगवान् कहते हैं कि सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष मैं हूँ।

यही एक वृक्ष है जो दिन में चौबीस घण्टे ऑक्सीजन देता है और रात को भी कार्बन डाइऑक्साइड नहीं छोड़ता है। चञ्चल भी बहुत है। वायु प्रवाहित न भी हो रही हो तब भी पीपल के पत्तों में चञ्चलता दिखाई पड़ती है। पन्द्रहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने ब्रह्माण्ड की उपमा पीपल के वृक्ष से की थी।

देवर्षीणां(ञ्) च नारदः
श्रीभगवान् कहते हैं कि देव ऋषियों में नारद मुनि मैं हूँ।

नारद जी को समझना आवश्यक है। नारद जी केवल एक व्यक्ति नहीं हैं। नारदीय एक परम्परा है, इसलिए बहुत तरह के नारद होते हैं। देव ऋषियों की भी अलग परम्परा है। देव ऋषि नारद एक ही हैं जो यहाँ पर वर्णित हैं। देवर्षियों की परम्परा में जो नारद वर्णित हैं, वही वास्तविक देवर्षि नारद हैं। फिल्मों और लोकप्रिय चित्रणों में नारद को अलग-अलग रूपों में दिखाया जाता है- कहीं आग फैलाने वाला, कहीं समाचारवाहक, कहीं गीतकार। इन सबको मिला कर एक ही व्यक्तित्व मान लिया गया है, जिससे भ्रम उत्पन्न हुआ है। वास्तविक नारद देवर्षि हैं, ज्ञान और भक्ति के वाहक और नारदीय परम्परा में उनका स्थान सर्वोच्च है।

गन्धर्वाणां(ञ्) चित्ररथः(स्)
श्रीभगवान् कहते हैं कि गन्धर्वलोक में चित्ररथ मैं हूँ।

चित्ररथ गन्धर्वों के राजा हैं। इन्हीं की बहन चित्राङ्गदा से अर्जुन का विवाह हुआ है। इनसे सम्बन्धित एक घटना का प्रसङ्ग इस प्रकार है-

पाण्डवों के वनवास के समय महाभारत में एक अप्रत्याशित घटना घटी। जब कर्ण को यह ज्ञात हुआ कि वह कुन्ती के पुत्र हैं और पाण्डव उनके सगे भाई हैं, तो उनका राजपाठ और शक्ति का दुरुपयोग चरम पर पहुँच गया। कर्ण की पापबुद्धि जागृत हो गई। उसने दुर्योधन से अनुरोध किया कि वे सेना लेकर जङ्गल में जाएँ और वहाँ विलास करें। कर्ण का तर्क था कि जङ्गल में मङ्गल भी हो जाएगा और पाण्डवों के दुःख में और वृद्धि होगी। पाण्डवों को तिरस्कार का अनुभव होगा। कर्ण को जो लोग महान समझते हैं उन्हें यह कथाएँ पता नहीं हैं।

पाण्डव जब जङ्गल में पहुँचे थे तो उन्होंने गन्धर्वों की अनुमति ली थी। चित्ररथ, जो विशेष रूप से अर्जुन के बहुत पुराने और घनिष्ठ मित्र थे, ने उनका हृदय से स्वागत किया और उन्हें रहने के लिए स्थान प्रदान किया। उनकी पुरानी मित्रता और स्नेह ने पाण्डवों का स्वागत और भी विशेष बना दिया।

दूसरी ओर, दुर्योधन और कर्ण की कोई नीति-बुद्धि नहीं थी। उन्होंने जङ्गल में पेड़ कटवाए, पशुओं को भगाया और आग लगाकर जङ्गल में उपद्रव मचाया। पाण्डवों ने जिस स्थान पर अपना शिविर लगाया था, वहीं पास में दुर्योधन और कर्ण का शिविर भी लग गया। वहाँ मदिरा का सेवन और शोर-शराबा होता रहा। जङ्गल में यह हङ्गामा फैलते ही गन्धर्वों तक इसकी सूचना पहुँची। चित्ररथ ने अपने गन्धर्व से पूछा, "कौन आया है?"

गन्धर्व ने उत्तर दिया, "महाराज, हस्तिनापुर से राजा दुर्योधन आए हैं और बड़ी गड़बड़ी कर रहे हैं।"

चित्ररथ क्रोधित होकर बोले, "उन्हें सूचित करो कि यह मेरा क्षेत्र है। वे यहाँ नहीं रह सकते, तुरन्त प्रस्थान करें।"

गन्धर्व दूत दुर्योधन और कर्ण के पास पहुँचे। दोनों नशे में धुत्त थे। कर्ण ने कहा, "हम किसी चित्ररथ को नहीं जानते। कह दो, हम यहाँ से नहीं जाएँगे।"

दूत ने विनम्रता से समझाने की कोशिश की, कि आप गन्धर्वों के राज्य में रहकर उनका अपमान कैसे कर सकते हैं?

कर्ण का क्रोध नहीं थमा। उसने दूत को मारकर वहाँ से भगा दिया। यह समाचार चित्ररथ तक पहुँचते ही उनका क्रोध और बढ़ गया। गन्धर्वों ने सेना के साथ आक्रमण कर दिया। **थोड़ी देर सङ्घर्ष के बाद कर्ण अपने प्राण बचाने के लिए दुर्योधन को वहीं छोड़कर भाग गया। मूल महाभारत में इसका वर्णन है।** दुर्योधन को बन्दी बना लिया गया। **गन्धर्वों ने पीछा कर के**

कर्ण को भी पकड़ लिया।

सैनिक युधिष्ठिर के पास दौड़े और बोले, "महाराज, बड़ा अनर्थ हो गया। गन्धर्वों ने दुर्योधन और कर्ण को बन्दी बना लिया है।"

युधिष्ठिर ने यह सुनते ही आदेश दिया, "चाहे जो भी हो, दुर्योधन को वहाँ से छुड़ाओ।"

भीम थोड़े उत्साहित होकर बोले, "यह तो बैठे-बैठे हमारा काम हो गया, बढ़िया।"

युधिष्ठिर ने गम्भीर स्वर में कहा, "हमारा आपस का झगड़ा अलग बात है, लेकिन हम पाण्डव और कौरव भाई हैं। जब किसी और से झगड़ा है और गन्धर्व सामने खड़े हैं, तब हम सौ और पाँच अलग नहीं है, हम एक सौ पाँच हैं, एक होकर काम करेंगे।" युधिष्ठिर धर्मराज ऐसे ही तो नहीं हैं, धर्मराज के नियम ऐसे ही हैं।

भीम ने थोड़ी बहस की लेकिन युधिष्ठिर अपनी बात पर अड़े रहे। फिर युधिष्ठिर ने अर्जुन की ओर देखा और बोले, "अर्जुन, क्या तुम जाओगे या मैं जाऊँ?" अर्जुन तो अर्जुन ही हैं, अर्जुन जैसा कोई और नहीं। बिना देर किए, भाई की आज्ञा मानते हुए धनुष उठाकर चल पड़े।

अर्जुन जैसे ही पहुँचे, गन्धर्वों ने उनका आदरपूर्वक स्वागत किया और उन्हें चित्ररथ के पास ले गए। चित्ररथ ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन, तुम्हारा काम तो हो गया। जिन्होंने तुम्हें परेशान किया था, उन दोनों, दुर्योधन और कर्ण को मैंने बन्दी बना लिया है। अब बताओ, इनका क्या करना है?"
अर्जुन ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "मित्र, इन्हें छोड़ दो।" चित्ररथ ने आश्चर्यचकित होकर कहा, "क्या बात कर रहे हो? ये लोग मेरे राज्य में आए और गन्धर्वों को मारा। इतना अनर्थ किया और तुम अभी भी उन्हें छोड़ने की बात कर रहे हो?"

अर्जुन ने कहा, " यह महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा है। मैं उनका निवेदन लेकर आया हूँ कि इन्हें छोड़ दें।" चित्ररथ ने मुस्कुराते हुए कहा, "अर्जुन, ये कैसी बात है? अगर चाहूँ तो इन्हें मरवा सकता हूँ। ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलता। तुम लोगों के साथ में इन्होंने जो अनाचार किया है, इतना अनर्थ किया है उसके बाद भी छोड़ने की बात करते हो "

अर्जुन ने दृढ़तापूर्वक कहा, "महाराज युधिष्ठिर ने आज्ञा दी है, इसलिए मुझे उसका पालन करना होगा। मैं आपसे यही विनती करता हूँ कि इन्हें छोड़ दें।" थोड़ी देर मित्रवत वार्ता चली। फिर चित्ररथ ने कहा, "अर्जुन, इन्होंने मेरे राज्य में आकर गन्धर्वों को मारा है। मैं इन्हें छोड़ने वाला नहीं हूँ। जो करना है, करो।"

अर्जुन ने उत्तर दिया, "यदि ऐसा है, तो मुझे आपसे युद्ध करना ही पड़ेगा।" चित्ररथ मुस्कुराए और बोले, "अर्जुन, तुम मेरे मित्र हो। मित्रों के बीच युद्ध नहीं होते।" अर्जुन ने कहा, "मैं भी ऐसा नहीं चाहता परन्तु महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा है। यदि उसे निभाने में कोई बाधा आए तो मुझे अपने भाइयों को छुड़ाने के लिए आपसे युद्ध करना ही पड़ेगा।"

तब अकेले अर्जुन ने दस हजार गन्धर्वों की सेना और चित्ररथ का सामना किया। उन्होंने पूरी सेना और चित्ररथ को पराजित कर दुर्योधन और कर्ण को मुक्त कराया।

कर्ण, जो केवल डींगे मारता है, युद्ध में अपने मित्र और पूरी सेना के होते हुए भी हार गया। हारने पर युद्ध छोड़कर भाग गया, अपने दोस्त को छोड़कर भाग गया। ऐसे में वह अर्जुन से अपनी तुलना कैसे कर सकता है? जिसने अकेले ही गन्धर्वों की पूरी सेना को परास्त कर दुर्योधन और कर्ण को मुक्त करवाया था।

सिद्धानां(ङ्) कपिलो मुनिः
श्रीभगवान् कहते हैं कि सिद्धों में कपिल मुनि मैं हूँ।
देवहुति और कर्दम ऋषि की सन्तान के रूप में कपिल मुनि ने अवतार लिया था। साङ्ख्य योग के प्रणेता, ये श्रीभगवान् के अंशावतार भी हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि सन्तों और सिद्ध पुरुषों में कपिल मुनि मैं हूँ।

10.27

उच्चैःश्रवसमश्वानां(म्),विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं(ङ्) गजेन्द्राणां(न्), नराणां(ञ्) च नराधिपम्॥10.27॥

घोड़ों में अमृत के साथ समुद्र से प्रकट होने वाले उच्चैःश्रवा नामक घोड़े को, श्रेष्ठ हाथियों में ऐरावत नामक हाथी को और मनुष्यों में राजा को मेरी विभूति मानो।

विवेचन-

उच्चैःश्रवसमश्वानां(म्)
श्रीभगवान कहते हैं कि घोड़ों में मैं उच्चैश्रवा हूँ।

जो समुद्र मन्थन के समय अमृत के साथ प्रकट हुआ था। समुद्र मन्थन से निकले चौदह रत्नों में उच्चैश्रवा घोड़ा भी था।

ऐरावतं(ङ्) गजेन्द्राणां(न्)
श्रीभगवान कहते हैं कि हाथियों में मैं ऐरावत हूँ।

समुद्र मन्थन के समय ऐरावत नामक हाथी भी निकला था जो इन्द्र को प्राप्त हुआ।

नराणां(ञ्) च नराधिपम्
श्रीभगवान कहते हैं कि मनुष्यों में राजा मुझे जान।

इसलिए राजाज्ञा को बड़ा महत्त्वपूर्ण माना गया है। राजा को श्रीभगवान् की विभूति माना गया है। अभी हमारे राजा मोदीजी हैं। इनका चित्र लगाकर पूजा की जा सकती है। राजा भी हो तो ऐसा हो। इनके पहले के राजा तो पूजने योग्य नहीं थे। नेपाल में सदैव राजा को विष्णु का अवतार माना जाता है। वहाँ राजा की पूजा भी होती थी, यह तो वहाँ की परम्परा है। पिछले पन्द्रह-बीस सालों में वामपन्थियों ने वहाँ का माहौल बिगाड़ दिया और नेपाल को सङ्कट में डाल दिया।

10.28

आयुधानामहं(म्) वज्रं(न्), धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः(स्), सर्पाणामस्मि वासुकिः॥10.28॥

आयुधों में वज्र (और) धेनुओं में कामधेनु मैं हूँ। सन्तान-उत्पत्ति का हेतु कामदेव मैं हूँ और सर्पों में वासुकि मैं हूँ।

विवेचन- आयुधानामहं(म्) वज्रं(न्)-

श्रीभगवान् ने कहा कि शस्त्रों में वज्र मैं हूँ।

अस्त्र और शस्त्र में भेद है –

अस्त्र वह है जिसे दूर से फेंककर प्रयोग किया जाता है, जैसे भाला और बाण।

शस्त्र वह है जिसे हाथ में पकड़कर सामने से लड़ा जाता है, जैसे तलवार, गदा, फरसा।

वज्र को विशेष क्यों कहा गया? यह इन्द्र का अस्त्र है, पर इसकी असली महत्ता दधीचि ऋषि के त्याग से जुड़ी है। दधीचि ने जगत के कल्याण के लिए अपने जीवित तन की हड्डियाँ तक अर्पित कर दीं। उनका यह बलिदान इस सत्य का प्रतीक है कि यदि शरीर का उपयोग लोक-कल्याण में हो सकता है, तो उसे त्याग देना ही सच्ची महानता है। यही वज्र की असल महिमा है।

धेनूनामस्मि कामधुक्-

श्रीभगवान् ने कहा कि गायों में कामधेनु मैं हूँ।

कामधेनु कोई साधारण गाय नहीं, बल्कि समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली दिव्य गौ हैं। "धेनु" का अर्थ है गाय और कामधेनु विशेष रूप से समुद्र मन्थन से प्रकट हुई अद्भुत धेनु हैं। यह केवल भौतिक इच्छाओं की पूर्ति का प्रतीक नहीं, बल्कि पोषण, समृद्धि और कल्याण का द्योतक भी है, इसलिए श्रीभगवान् ने स्वयं को कामधेनु कहा, जो सबको पोषण देती है और सभी की आवश्यकताओं को पूर्ण करती है।

प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः(स्)-

श्रीभगवान् ने कहा कि शास्त्र विधि से सन्तानोत्पत्ति का हेतु कामदेव मैं हूँ।

श्रीभगवान् यहाँ यह स्पष्ट करते हैं कि वे काम के विरोधी नहीं हैं। इच्छा या कामना तब तक अनुचित नहीं जब तक वह न्यायोचित और शास्त्रसम्मत हो। धर्मानुसार प्राप्त साधनों से, मर्यादा में रहकर जो कामना की जाती है, वही उनकी विभूति है। त्रुटि तब होती है जब मनुष्य उस वस्तु या सुख की चाह करता है, जिस पर उसका अधिकार नहीं है, इसलिए श्रीभगवान् कहते हैं – न्याययुक्त कामना मेरा स्वरूप है, अन्याययुक्त वासना नहीं।

सर्पाणामस्मि वासुकिः-

श्रीभगवान् ने कहा कि सर्पों में नागराज वासुकि मैं हूँ।

10.29

अनन्तश्चास्मि नागानां(म्), वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि, यमः(स्) संयमतामहम्॥10.29॥

नागों में अनन्त (शेषनाग) और जल-जन्तुओं का अधिपति वरुण मैं हूँ। पितरों में अर्यमा और शासन करने वालों में यमराज मैं हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं-

"नागों में, मैं शेषनाग हूँ, जलचरों के अधिपति में वरुण हूँ, पितरों में अर्यमा हूँ और संयम रखने वालों में यमराज हूँ।"

शेषनाग स्वयं श्रीभगवान् के ही अवतार हैं– लक्ष्मण जी और बलराम जी शेष के अवतार माने जाते हैं।

पितृलोक के अधिपति अर्यमा देवता हैं। जब हम श्राद्ध, पिण्डदान या तर्पण करते हैं तो यह सीधा हमारे पितरों तक कैसे पहुँचता है? यह कार्य अर्यमा देवता करते हैं।

शास्त्रों में कहा गया है कि पितृ चार प्रकार के होते हैं।कव्यवाह, अनल, सोम और अर्यमा।

चन्द्रमा के ऊर्ध्व भाग में पितृलोक स्थित है और वहाँ अर्यमा देवता सभी पितरों को तृप्त करने का कार्य करते हैं। अर्यमा देवता का कार्य है कि हम ब्राह्मण, गाय या कुत्ते को जो रोटी देते हैं वो सब हमारे पितरों तक पहुँचाए। हम अपने पितरों के निमित्त खीर-पूरी निकालते हैं वो उनको नहीं मिलता। वे जिस योनि में होते हैं, अर्यमा उसके अनुरूप उन्हें पहुँचाते हैं। हमारे पूर्वज किसी भी योनि में हों, चाहे पशु में, पक्षी में या मनुष्य में, वहाँ उनके आहार के अनुसार ही पिण्ड पहुँचा दिया जाता है। जैसे यदि वे सिंह योनि में हैं, तो हमारे द्वारा अर्पित पिण्ड उनके आहार माँस का रूप लेकर वहाँ पहुँचता है। यदि वे गौ-योनि में हैं तो घास का रूप लेकर पहुँचता है। यदि वे देव-योनि में हैं तो दिव्य आहार बन जाता है। यही कारण है कि श्राद्ध कर्म और तर्पण का फल हर स्थिति में पितरों तक पहुँचता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि उन अर्यमा में भी मैं ही हूँ और न्याय एवं संयम से शासन करने वाले यमराज में भी मैं ही हूँ।

10.30

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां(ङ्), कालः(ख्) कलयतामहम्।
मृगाणां(ञ्) च मृगेन्द्रोऽहं(म्), वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥10.30॥

दैत्यों में प्रह्लाद और गणना करने वालों (ज्योतिषियों) में काल मैं हूँ तथा पशुओं में सिंह और पक्षियों में गरुड मैं हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि-

दैत्यों में प्रह्लाद मैं हूँ,
गणना करने वालों का समय मैं हूँ, यानी क्षण, घड़ी, दिन, पक्ष, मास आदि वह समय मैं हूँ,
पशुओं में मृगराज मैं हूँ,
पक्षियों में गरुड़ मैं हूँ।

10.31

पवनः(फ्) पवतामस्मि, रामः(श्) शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां(म्) मकरश्चास्मि, स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥10.31॥

पवित्र करने वालों में वायु (और) शास्त्रधारियों में राम मैं हूँ। जल-जन्तुओं में मगर मैं हूँ। बहने वाले स्त्रोतों में गंगाजी मैं हूँ।

विवेचन-

पवनः(फ्) पवतामस्मि

श्रीभगवान् कहते हैं कि पवित्र करने वाले साधनों में मैं वायु हूँ।

हमारे जीवन में शुद्धि और पवित्रता का बहुत महत्त्व है। बर्तन धोने का ही उदाहरण लें। हम जल और मिट्टी (आजकल साबुन) से बर्तन साफ करते हैं, लेकिन केवल जल से धो देने मात्र से वह पवित्र नहीं होता। यदि किसी ने गिलास धोकर तुरन्त उसमें पानी डालकर किसी और को दे दिया तो उसे शुद्ध नहीं माना जाता। क्यों? क्योंकि शुद्धि तभी पूर्ण होती है जब बर्तन वायु से सूख जाए। **स्वर्ण (सोने) का पात्र केवल वायु से सूखने पर ही पवित्र हो जाता है। चाँदी का पात्र भी बिना मिट्टी के केवल जल से धोकर वायु में सुखाने पर शुद्ध हो जाता है**। अन्य धातुओं और पात्रों को पवित्र करने लिए मिट्टी या साबुन से माँजना फिर जल से धोना और अन्त में वायु से सुखाना आवश्यक है। इस प्रकार वायु को शुद्धि का वास्तविक आधार माना गया है।

रामः(श्) शस्त्रभृतामहम्

श्रीभगवान् कहते हैं कि शास्त्रधारियों में राम मैं हूँ।

अकेले रामजी का बाण है जो जाकर वापस आ गया। बाकी सबके मात्र जाते हैं और यह अकेला बाण है जो कभी चूकता नहीं। कोई औषधि बहुत अच्छी होती है तो बोलते हैं एकदम रामबाण है। एक बार में काम हो जाएगा। रामबाण कभी खाली नहीं जा सकता क्योंकि यह भगवान् का बाण है। वह अचूक है ।

झषाणां(म्) मकरश्चास्मि

श्रीभगवान् कहते हैं कि मछलियों में मगर मैं हूँ।

स्रोतसामस्मि जाह्नवी

श्रीभगवान् कहते हैं कि नदियों में भागीरथी गङ्गा मैं हूँ।

ढाई हजार किलोमीटर तक बहने वाली गङ्गाजी भारत और बाङ्ग्लादेश दो देशों में बहती हैं- गङ्गोत्री से गङ्गासागर तक। गङ्गोत्री से ऋषिकेश तक ये पहाड़ों में बहती हैं। पहली बार हरिद्वार में मैदानों में आयीं। इस बीच चौदह स्थानों पर अलकनन्दा आदि अलग-अलग नदियाँ उनसे मिलती हैं और जो भी मिलती हैं, गङ्गाजी बन जाती हैं। ये सभी चौदह स्थान प्रयाग कहलाते हैं, देवप्रयाग, कर्णप्रयाग, रुद्र प्रयाग आदि। प्रयागों पर स्नान करने का विशेष महत्व है। मैदानी भाग में जो तीन प्रमुख तीर्थ हैं, सभी गङ्गाजी के तट पर हैं-हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर।

वैसे तो सब जगह स्नान करना पुण्यदाई है पर चौदह प्रयाग और गङ्गासागर, ऐसे स्थानों पर गङ्गाजी में स्नान विशेष रूप से पुण्यदाई माना गया है।

10.32

सर्गाणामादिरन्तश्च,मध्यं(ञ्) चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां(म्), वादः(फ्) प्रवदतामहम्॥10.32॥

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण सृष्टियो के आदि, मध्य तथा अन्त में मैं ही हूँ। विद्याओं में अध्यात्मविद्या (ब्रह्म विद्या) और परस्पर शास्त्रार्थ करने वालों का(तत्त्व-निर्णय के लिये किया जाने वाला) वाद मैं हूँ।

विवेचन- सर्गाणामादिरन्तश्च,मध्यं(ञ्) चैवाहमर्जुन-

श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! सम्पूर्ण सृष्टियो के आदि, मध्य तथा अन्त मैं ही हूँ।

अध्यात्मविद्या विद्यानां(म्)-

श्रीभगवान् कहते हैं कि विद्याओं में अध्यात्मविद्या मैं ही हूँ।

वादः(फ्) प्रवदतामहम्-

श्रीभगवान् कहते हैं कि परस्पर शास्त्रार्थ (संवाद) करने वालों का तत्त्व-निर्णय के लिये किया जाने वाला वाद मैं हूँ।

ये वाद चार प्रकार के हैं।

1. जल्प- अपना मण्डन, दूसरे का खण्डन। जब रामजी और रावण सामने खड़े हैं तो रावण बड़ी-बड़ी डींगे हाँक रहा है। अपनी बढ़ाई किए जा रहा है। श्रीराम ने रावण से कहा कि रुको, तुमने बहुत जल्प कर लिया। रावण अपना मण्डन कर रहा है और श्रीराम का खण्डन।

गोस्वामीजी जैसा काव्य तो कोई कर ही नहीं सकता। मानस में ये छोटे-छोटे उपयोग देखेंगे तो ज्ञात होता है कि गोस्वामी जी का ज्ञान अद्भुत है।

सुनि सुर बचन काल वत्स जाना, बिहसि वचन कर कृपा निधाना।
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई।

2. वितण्डा- दूसरे का खण्डन पर अपने मण्डन के लिए कुछ नही। रावण के पास अपना मण्डन करने को तो कुछ था। आजकल के भारत गठबन्धन के लोगों को अपना मण्डन करने को तो कुछ है ही नहीं, जैसे राहुल गाँधी, अरविन्द केजरीवाल, तेजस्वी यादव, अखिलेश यादव, इनके पास अपना बतलाने का तो कुछ है ही नहीं। अपने मण्डन के लिए कुछ नहीं, बस मोदी ने ये कर दिया, वो कर दिया। सारा विपक्ष दिनभर सुबह से शाम तक मात्र मोदी के बारे में वितण्डा करता रहता है। स्वयं कुछ किया नहीं, अपना मण्डन करने के लिए कुछ है नहीं, दूसरे का खण्डन करते रहो। अमेरिका ने टैरिफ लगा दिया, यह मोदी खराब आदमी है। अपना बोलने को

कुछ भी नहीं है। ये सब रावण से भी गए बीते हैं। झूठ बोलकर, कुछ भी उल्टा-पुल्टा बोलकर दिन-रात मोदी जी का खण्डन करते रहते हैं। मोदी जी की माँ का वीडियो चला दिया। कैसे दुष्ट लोग हैं! स्वर्गवासी माँ का वीडियो बनाकर कैसी दुष्टता दिखाई है ।

3. विवाद- इसमें एक बात तय है, दूसरे की नहीं माननी है, चाहे वह सही हो या गलत। कुछ भी करके अपनी बात सही साबित हो जाए। विवाद में जो व्यक्ति प्रवृत होता है, उसको निष्कर्ष से कोई लेना-देना नहीं होता है। बात सुलझ जाए इससे कोई मतलब नहीं। बस किसी भी तरह से बात में झगड़ा बड़े, बात बिगड़ती रहे। ऐसे लोगों को विवाद में ही रस आता है। ये लोग कोई निष्कर्ष निकलने नहीं देना चाहते हैं।

4. संवाद- चौथा है संवाद जिसको कि श्रीभगवान् ने वाद कहा। मतलब दो लोग बैठे आपस में बात कर रहे हैं और चर्चा करके यह पता लगाना कि क्या सही है? कौन सही है इसका निष्कर्ष नहीं निकालना है। दो लोग बात कर रहे हैं और जिसकी बात सत्य हो उसे मान लिया जाय, इसलिए कोर्ट केस को वाद कहते हैं। कोर्ट केस करने वाले को वादी और दूसरे पक्ष को प्रतिवादी कहते हैं। दो लोग अपनी बात रखते हैं और जिसकी बात सही होती है उसके पक्ष में न्यायधीश निर्णय देते हैं और उसे मानना पड़ता है। क्या सही है इसका निष्कर्ष निकालना है। हमारी परम्परा में संवाद को श्रेष्ठ माना गया है। मैं सही हूँ या सही नहीं हूँ, यह केन्द्र का विषय नहीं है। जो सही बात है वह दोनों पक्ष मान लें। तर्क से पता लगा लें। श्रीभगवान् ने कहा, संवाद सर्वश्रेष्ठ विधि है। बातचीत में अपने को सही न करके, क्या विषय सही है उस पर केन्द्रित करता है और मिलकर सही बात पर पहुँचा जाए, यह लक्ष्य होता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि संवाद मैं हूँ।

10.33

अक्षराणामकारोऽस्मि, द्वन्द्वः(स्) सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः(ख्) कालो, धाताहं(म्) विश्वतोमुखः॥10.33॥

अक्षरों में अकार और समासों में द्वन्द्व समास मैं हूँ। अक्षय काल अर्थात् काल का भी महाकाल (तथा) सब ओर मुख वाला धाता (सबका पालन-पोषण करने वाला भी) मैं ही हूँ।

विवेचन- अक्षराणामकारोऽस्मि

श्रीभगवान् कहते हैं कि अक्षरों में अकार मैं हूँ।

अहमेवाक्षयः(ख्) कालो, धाताहं(म्) विश्वतोमुखः

श्रीभगवान् कहते हैं कि कालों में विश्वतोमुख मैं हूँ। अक्षय काल का भी काल महाकाल हूँ और सबका धारण पोषण करने वाला भी मैं ही हूँ।

द्वन्द्वः(स्) सामासिकस्य च-

श्रीभगवान् कहते हैं कि समासों में द्वन्द्व समास मैं हूँ।

चार मुख्य समास पढ़े थे हमने दसवीं में-

पहला अव्ययीभाव समास-

जिसमें प्रथम पद प्रधान होता है, जैसे बेशर्म, यथाशक्ति, प्रतिक्षण। बेशर्म, इसमें शर्म महत्त्वपूर्ण नहीं है, बे महत्त्वपूर्ण है। यथाशक्ति, इसमें शक्ति महत्त्वपूर्ण नहीं है यथा महत्त्वपूर्ण है। वैसे ही प्रतिक्षण।

दूसरा समास होता है तत्पुरुष समास-

इसमें दूसरा पद प्रधान होता है। जैसे अकाल पीड़ित, आराम कुर्सी। अकाल पीड़ित में अकाल महत्त्वपूर्ण नहीं है पीड़ित महत्त्वपूर्ण है,

आराम कुर्सी इसमें कुर्सी महत्त्वपूर्ण है।

तीसरा बहुब्रीहि समास-

इसमें दोनों पद प्रधान नहीं होते हैं। जैसे दशानन, दिगम्बर, धनञ्जय। दशानन - दश आनन हैं जिसके अर्थात् रावण, दिगम्बर - जो वस्त्र न धारण करें, अर्थात् जैन मुनि, धनञ्जय - अर्थात् अर्जुन

चौथा समास सबसे महत्त्वपूर्ण है, द्वन्द्व समास-

इसमें दोनों पद प्रधान होते हैं। जैसे सुख-दुःख, राजा-रङ्क, सर्दी-गर्मी, अन्न-जल। दोनों पदों का समान महत्त्व है। श्रीभगवान् ने पूरी श्रीमद्भगवद्गीता में द्वन्द्व को बहुत महत्त्व दिया है और सारे द्वन्द्वों में समान हो जाओ, इसको श्रीभगवान् ने सबसे अधिक महत्त्व दिया है। जो द्वन्द्व को जीत लेता है वह जीवन को जीत लेता है। सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी, अनुकूलता-प्रतिकूलता, भूख-प्यास, इसमें सम हो जाना द्वन्द से मुक्ति है, इसलिए श्रीभगवान् ने कहा कि समासों में द्वन्द्व समास मैं हूँ।

द्वन्द्वातीतो विमत्सरः

श्रीभगवान कहते हैं, सुख-दुःख, राग-द्वेष इन द्वन्द्वों से ऊपर उठो।

10.34

मृत्युः(स्) सर्वहरश्चाहम्, उद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्तिः(श्) श्रीर्वाक्च नारीणां(म्), स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा॥10.34॥

सबका हरण करने वाली मृत्यु और भविष्य में उत्पन्न होने वाला मैं हूँ तथा स्त्री-जाति में कीर्ति, श्री, वाक् (वाणी), स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा (मैं हूँ)।

विवेचन- मृत्युः(स्) सर्वहरश्चाहम्, उद्भवश्च भविष्यताम्-

श्रीभगवान् कहते हैं, सबका हरण करने वाली मृत्यु और उत्पन्न करने वाला मैं ही हूँ।

अङ्ग्रेजी में बड़ा सुन्दर शब्द है-
GOD - Generator, Operator, Destroyer

बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति है- श्रीभगवान् की
जनरेटर (Generator)- यह ब्रह्माजी का प्रतीक है जो सम्पूर्ण सृष्टि के उत्पत्ति करने वाले हैं।
ऑपरेटर (Operator)- यह भगवान् विष्णु का द्योतक है जो इस संसार का पालन-पोषण और सञ्चालन करते हैं।
विध्वंसक (Destroyer)- यह भगवान् शिव का स्वरूप है जो संहारक हैं और प्राणियों को मोक्ष की ओर ले जाते हैं।

कीर्तिः(श्) श्रीर्वाक्च नारीणां(म्), स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा-

श्रीभगवान् कहते हैं कि कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा – ये सात गुण मेरे स्वरूप हैं।

फिर श्रीभगवान् ने बताया कि ये सात दिव्य स्त्रियाँ देवताओं की पत्नियाँ मानी जाती हैं।
स्मृति, मेधा, क्षमा और धृति– ये दक्ष प्रजापति की पुत्रियाँ हैं और मनुष्य के अन्तरङ्ग गुण कहलाती हैं।
श्री– अर्थात् लक्ष्मी जी, भृगु की पुत्री और ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री।
वाक्– सरस्वती जी, ब्रह्माजी की पुत्री और वाणी की अधिष्ठात्री।
कीर्ति– यश और प्रसिद्धि की देवी।

इन सातों को श्रीभगवान् ने अपनी ही विभूतियाँ बताया।
इनमें से चार गुण – **स्मृति (स्मरण शक्ति), मेधा (तेज बुद्धि), धृति (सङ्कल्प शक्ति) और क्षमा (क्षमा करने की क्षमता)** – ये हमारे भीतर के आभूषण हैं।
और तीन – **कीर्ति (यश), श्री (धन-ऐश्वर्य) और वाक् (वाणी)** – ये बाहर से दिखाई देने वाले गुण हैं।
इसलिए ही हमारे समाज में पुरुष को "श्रीमान्" और स्त्री को "श्रीमती" कहा जाता है, अर्थात् जो ऐश्वर्य और सम्पन्नता से युक्त हो।

श्रीभगवान् बताते हैं कि ये सातों गुण जब किसी में प्रकट होते हैं तो समझो वह मेरे ही अंश का प्रकाश है।

10.35

बृहत्साम तथा साम्नां(ङ्),गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां(म्) मार्गशीर्षोऽहम्, ऋतूनां(ङ्) कुसुमाकरः॥10.35॥

गायी जाने वाली श्रुतियों में बृहत्साम और सब छन्दों में गायत्री छन्द मैं हूँ। बारह महीनों में मार्गशीर्ष (और) छः ऋतुओं में वसन्त मैं हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् की यह वाणी अत्यन्त मनोहर है-
गायन करने वाली श्रुतियों में बृहत्साम और छन्दों में, मैं गायत्री हूँ, जिसे श्रीभगवान् ने अपनी विशेष विभूति बताया है।

शास्त्रों में गायत्री की महिमा अनुपम कही गई है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि मासों में, मैं मार्गशीर्ष हूँ।

महाभारत काल में वर्ष का आरम्भ मार्गशीर्ष से माना जाता था, जैसे आज हम विक्रमादित्य काल से चैत्र का आरम्भ मानते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि ऋतुओं में, मैं बसन्त ऋतु हूँ।

बसन्त ऋतु से बढ़कर कोई और ऋतु नहीं मानी जाती— यह ऋतुओं का श्रृङ्गार है।

10.36

द्यूतं(ञ्) छलयतामस्मि,तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि, सत्त्वं(म्) सत्त्ववतामहम्॥10.36॥

छल करने वालों में जुआ (और) तेजस्वियों में तेज मैं हूँ। (जीतने वालों की) विजय, (निश्चय करने वालों का) निश्चय (और) सात्त्विक मनुष्यों का सात्त्विक भाव मैं हूँ।

विवेचन- छल करने वालों में, मैं जुआ हूँ—यह वचन सुनकर पहली नज़र में भ्रम हो सकता है। कोई जुआरी सोचे कि यह तो श्रीभगवान् की विभूति है, फिर हमें क्यों रोका जाता है? तो यह उसकी भूल होगी। जुए की आदत लगते ही मनुष्य का जीवन पलभर में बर्बाद हो सकता है। यही तमोगुण की चरम अवस्था है।

श्रीभगवान् यह स्पष्ट करते हैं कि तमोगुण भी मेरी ही विभूति है, जैसे रजोगुण और सत्त्वगुण मेरी विभूतियाँ हैं। श्रीभगवान् का वास्तविक आशय है कि संसार में जो कुछ भी है— सत्त्व, रज और तम, सबमें मेरा ही वास है, मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

इसीलिए श्रीभगवान् कहते हैं-

छल करने वालों में जुआ मैं हूँ,
प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव मैं हूँ,
तेजस्वियों का तेज मैं हूँ,
विजेताओं की विजय मैं हूँ,
निश्चय करने वालों का निश्चय मैं हूँ और
सात्त्विक पुरुषों का सात्त्विक भाव भी मैं ही हूँ।

अतः सत्त्वगुण होगा, रजोगुण होगा, तमोगुण होगा, सब में मेरी विभूतियाँ विद्यमान हैं इसलिए छल करने वालों में जुआ मैं हूँ। प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव, तेज, जीतने वालों की विजय और निश्चय करने वालों का निश्चय मैं हूँ। सात्त्विक पुरुषों का सात्त्विक भाव मैं हूँ।

10.37

वृष्णीनां(म्) वासुदेवोऽस्मि, पाण्डवानां(न्) धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं(म्) व्यासः(ख्), कवीनामुशना कविः॥10.37॥

वृष्णि वंशियों में वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण (और) पाण्डवों में अर्जुन मैं हूँ। मुनियों में वेदव्यास (और) कवियों में कवि शुक्राचार्य भी मैं हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन!

वृष्णियों में, मैं वासुदेव हूँ,
पाण्डवों में धनञ्जय अर्थात् मेरा सखा तू,
मुनियों में वेदव्यास मैं हूँ
और कवियों में, मैं ही कवि शुक्राचार्य हूँ।

10.38

दण्डो दमयतामस्मि, नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं(ञ्) चैवास्मि गुह्यानां(ञ्), ज्ञानं(ञ्) ज्ञानवतामहम्॥10.38॥

दमन करनेवालोंमें दण्डनीति और विजय चाहनेवालोंमें नीति मैं हूँ। गोपनीय भावोंमें मौन और ज्ञानवानोंमें ज्ञान मैं हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि-

दमन करने वालों में दण्ड मैं हूँ।
दमयताम्- सबको काबू में रखना, जीतने की इच्छा रखने वालों की नीति मै हूँ,
गुह्यानां- गोपनीय रहना, मौन रहकर किसी को बताना नहीं, गोपनीय भावों में, मैं मौन हूँ,
ज्ञानवानों में, मैं ज्ञान हूँ।

10.39

यच्चापि सर्वभूतानां(म्), बीजं(न्) तदहमर्जुन।

न तदस्ति विना यत्स्यान्, मया भूतं(ञ्) चराचरम्॥10.39॥

और हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियों का जो बीज (मूलकारण) है, वह बीज भी मैं ही हूँ; (क्योंकि) वह चर-अचर (कोई) प्राणी नहीं है जो मेरे बिना हो अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियों का बीज मैं हूँ। चर-चराचर कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जो मुझसे अलग हो। श्रीभगवान् यह स्पष्ट कर रहे हैं कि सभी प्राणियों का सनातन मूल और बीज मैं ही हूँ। इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल इन विभूतियों में ही मैं हूँ। मैं सभी चर और अचर में व्याप्त हूँ, परन्तु इन विशेष विभूतियों में तुम्हें मेरा विशेष दर्शन भी स्पष्ट रूप से होता है।

10.40

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां(म्), विभूतीनां(म्) परन्तप।
एष तूद्देशतः(फ्) प्रोक्तो,विभूतेर्विस्तरो मया॥10.40॥

हे परंतप अर्जुन ! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है। मैंने (तुम्हारे सामने अपनी) विभूतियों का जो विस्तार कहा है, यह तो (केवल) संक्षेप से नामनात्र कहा है।

विवेचन- श्रीभगवान् ने कहा कि हे परन्तप! मेरी विभूतियों का अन्त नहीं है। मैंने यहाँ बयासी विभूतियों का उल्लेख किया है। विशेष रूप से बीसवें से उनतालीसवें श्लोक तक, परन्तु इससे यह मत समझो कि केवल इतनी ही मेरी विभूतियाँ हैं। युद्ध का समय सामने है, इसलिए मैंने तुम्हें जो भी ऐसी परिस्थिति में समझ में आये, ऐसा सङ्क्षेप में बता दिया। मेरे द्वारा वर्णित यह विस्तार केवल सङ्क्षिप्त परिचय है। मेरी विभूतियों की असली विशालता असीम है।

10.41

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं(म्), श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं(म्), मम तेजोंऽशसम्भवम्॥10.41॥

जो-जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी तथा पदार्थ हैं, उस-उसको तुम मेरे ही तेज (योग अर्थात् सामर्थ्य) के अंश से उत्पन्न हुई समझो।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! जो भी ऐश्वर्य, वैभव, शक्ति और कान्ति से युक्त है, उसे तुम मेरी तेजस्विता की अभिव्यक्ति समझो। श्रीभगवान् ने कहा कि सङ्क्षेप में यही समझो कि ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त हर वस्तु में मेरा रूप प्रकट है। इसका अर्थ यह है कि संसार में जो भी महान, प्रभावशाली और आकर्षक प्रतीत होता है, वह मेरी ही विभूति का अंश है, इसलिए हमारे यहाँ तेज और शक्ति को इतना महत्त्व दिया गया है। तेज केवल शारीरिक शक्ति या बल नहीं है, बल्कि यह ऐश्वर्य, वैभव, प्रभाव और दिव्यता का प्रतीक है। **जब तुम किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना में अत्यधिक शक्ति, भव्यता या आकर्षण देखते हो तो समझो कि वह मेरी विभूति का दर्शन है।** जब हम किसी व्यक्ति में श्रेष्ठता, शक्ति, ज्ञान, साहस, कला या किसी विशेष गुण को देखते हैं तो हम उसे सम्मान देते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं और उसे पूजनीय मानते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि जो भी वैभव, शक्ति और तेज से युक्त है, वह उनकी ही विभूति है।

जब हम किसी को श्रेष्ठ मानकर सम्मान करते हैं, उसका आदर करते हैं, उसका अनुसरण करते हैं तो वास्तव में हम श्रीभगवान् की शक्ति और उनके गुणों का सम्मान कर रहे होते हैं। यह एक तरह से ईश्वर की उपासना का सहज और प्राकृतिक रूप है।

10.42

अथवा बहुनैतेन, किं(ञ्) ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं(ङ्) कृत्स्नम्, एकांशेन स्थितो जगत्॥10.42॥

अथवा हे अर्जुन ! तुम्हें इस प्रकार बहुत-सी बातें जानने की क्या आवश्यकता है? (जबकि) मैं (अपने किसी) एक अंश से इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित हूँ अर्थात् अनन्त ब्रह्मांड मेरे एक अंश में है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम जितना भी जानने का प्रयास करोगे, उससे तुम्हारा क्या लाभ? मैं सम्पूर्ण सृष्टि को अपनी योगशक्ति के केवल एक छोटे अंश से धारण करके स्थित हूँ। तुम जितनी भी ब्रह्माण्ड की जानकारी रखते हो, वह सब मेरे एक अंश में ही समाहित है। मेरे पूर्ण स्वरूप, मेरी सम्पूर्ण महिमा और शक्ति को कोई पूर्ण रूप से जान ही नहीं सकता।

इस प्रकार अध्याय के पूरे होने के साथ विवेचन का समापन हुआ। हरि नाम सङ्कीर्तन के पश्चात् प्रश्नोत्तर सत्र प्रारम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर-

प्रश्नकर्ता- क्षमा अग्रवाल दीदी
प्रश्न- "**स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, समाधिस्थस्य केशव",** में स्थितप्रज्ञ का क्या अर्थ है?
उत्तर- बहुत ही सरल भाषा में इसका अर्थ होता है- योगी।

प्रश्नकर्ता- रजनीश भैया
प्रश्न- श्रीभगवान् अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए बता रहे हैं कि शस्त्रधारियों में राम, रुद्रों में शङ्कर, अक्षरों में ओङ्कार मैं हूँ तो जब हम नाम जप कर रहे होते हैं तो कई बार हम श्रीभगवान् के भिन्न-भिन्न नामों का जप करते हैं तो हमें इसे किसका जप मानना चाहिए? क्या हम श्रीकृष्ण का जप कर रहे हैं, ऐसा मानना चाहिए? क्या हम श्रीभगवान् के भिन्न-भिन्न नामों का जप कर सकते हैं?
उत्तर- हमें ऐसा मानना चाहिए कि हम परम ब्रह्म का जप कर रहे हैं। श्रीभगवान् के भिन्न-भिन्न नामों का जप करने में किसी प्रकार की भी कोई आपत्ति नहीं है। जब हम नियम बनाकर जप करते हैं तब अपने आप से हम श्रीभगवान् के भिन्न-भिन्न नामों का जप नहीं कर पाते और जप भी तब ही फलदाई होता है जब हम एक नाम को पकड़ कर दिन रात, सतत उसी का अभ्यास करते हैं जिससे हमारा मन उस परमात्मा से जुड़ा रहे। हमारे हृदय की धड़कन के साथ यह नाम जुड़ जाए, ऐसा अभ्यास केवल मात्र एक नाम जप से ही सम्भव हो सकता है।

प्रश्नकर्ता- जय भैया
प्रश्न- हम अभिमान को बुरा मानते हैं लेकिन श्रीभगवान् अपनी विभूतियों को बताते हुए जो कुछ भी कह रहे हैं, क्या अभिमान के कारण ऐसा कह रहे हैं?
उत्तर- अभिमान से अभिप्राय: यह होता है कि हम स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ मानते हैं लेकिन श्रीभगवान् किसी को दूसरा मानते ही नहीं है। श्रीभगवान् यही कह रहे हैं कि मेरे अतिरिक्त और कोई है ही नहीं। श्रीभगवान् कहते हैं कि-

द्यूतं(ञ्) छलयतामस्मि
छल करने वालों में जुआ मैं हूँ।
वृष्णीनां(वँ) वासुदेवोऽस्मि, पाण्डवानां(न्) धनञ्जयः।
वृष्णि वंशियों में वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण और पाण्डवों में अर्जुन मैं हूँ।
ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स्) सनातनः।
सभी प्राणियों में श्रीभगवान् का वास है लेकिन पाण्डवों में अर्जुन को चुनने का तात्पर्य यह है कि अर्जुन में वे सारे गुण हैं जिनके द्वारा परमात्मा का दर्शन होता है। अर्जुन श्रीभगवान् की विभूति हैं।

प्रश्नकर्ता- दीपा दीदी
प्रश्न- मैं श्रीमद्भगवद्गीता से जुड़ पायी हूँ, यह श्रीभगवान् की कृपा का ही परिणाम है लेकिन मेरी माता जी इसके लिए समय नहीं दे पाती हैं तो क्या उन पर श्रीभगवान् की कृपा विशेष नहीं है?
उत्तर- यह सब आप पर भी निर्भर करता है, आप किस विकल्प का चुनाव करते हैं। यदि हम चुनौतियों से घबराकर जीवन के लिए उपयोगी वस्तुओं का त्याग करने लगेंगे तो स्वयं से ही जीवन के अभ्युदय के लिए अनिवार्य अनेक लाभों से वञ्चित रह जाएँगे।

प्रश्नकर्ता- वैशाली दीदी
प्रश्न- क्या चौरासी लाख योनियाँ होती हैं?
उत्तर- हमारे शास्त्रों के अनुसार चौरासी लाख योनियाँ होती हैं। हमारा धर्म सनातन है और लाखों वर्षों की परम्परा में जो बातें नहीं बदलीं, वही सत्य हैं। छियालीस संस्कृतियों में से केवल सनातन संस्कृति ही अभी तक जीवित है। अतः उसमें कही गईं सभी बातें भी सत्य हैं, जिन्हें झुठलाया नहीं जा सकता।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'विभूतियोग' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं

पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||